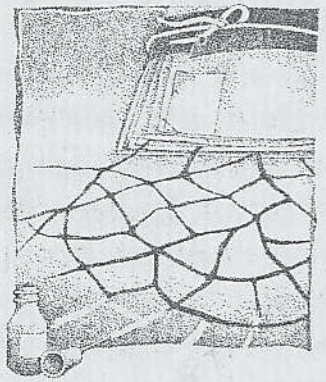

अब हमारे सामने मुख्य चुनौती है खरीफ की फसल को बचाना और आने वाली रबी की फसल की ठीक-ठीक तैयारी। दुर्भाग्य से इसका कोई बना-बनाया ढांचा सरकार के हाथ फिलहाल नहीं दिखता। देश के बहुत बड़े हिस्से में कुछ साल पहले तक किसानों को इस बात की खूब समझ थी कि मानसून के आसार अच्छे न दिखें तो पानी की कम मांग करने वाली फसलें बो ली जाएं। इस तरह के बीज पीढ़ियों से सुरक्षित रखे गए थे। कम प्यास वाली फसलें अकाल का दौर पार कर जाती थीं। लेकिन आधुनिक विकास के दौर ने, नई नीतियों ने किसान के इस स्वावलंबन को अनजाने में ही सही, पर तोड़ा जरूर है।

पैरवी
नई दिल्ली

अकेले नहीं आता अकाल

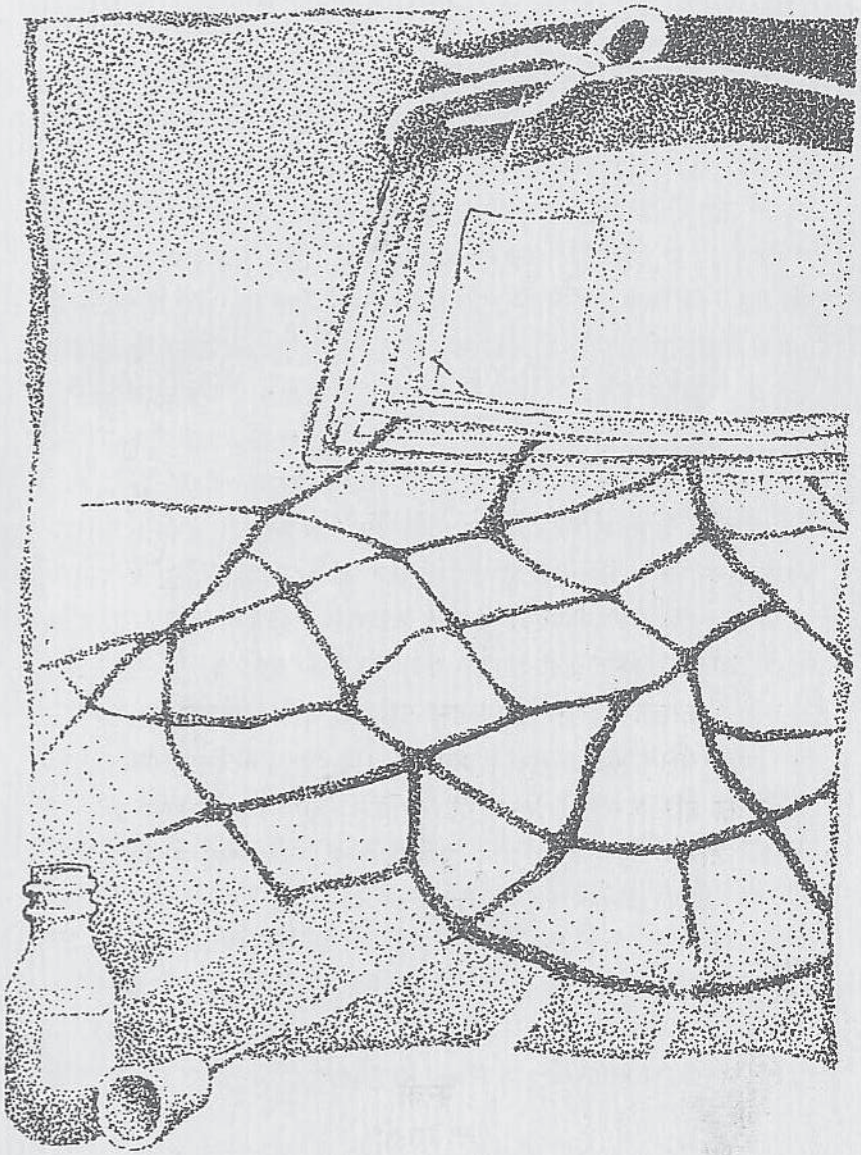

अकेले नहीं आता अकाल

अकाल की पदचाप साफ सुनाई दे रही है। सारा देश चिंतित है। यह सच है कि अकाल कोई पहली बार नहीं आ रहा है, लेकिन इस अकाल में ऐसा कुछ होने वाला है, जो पहले कभी नहीं हुआ। देश में सबसे सस्ती कारों का वादा पूरा किया जा चुका है। कार के साथ ऐसे अन्य यंत्र-उपकरणों के दाम भी घटे हैं, जो 10 साल पहले बहुत सारे लोगों की पहुंच से दूर होते थे। इस दौर में सबसे सस्ती कारों के साथ सबसे महंगी दाल भी मिलने वाली है— यही इस अकाल की सबसे भयावह तस्वीर होगी। यह बात औद्योगिक विकास के विरुद्ध नहीं कही जा रही है। लेकिन इस महादेश के बारे में जो लोग सोच रहे हैं, उन्हें इसकी खेती, इसके पानी, अकाल, बाढ़ सबके बारे में सोचना होगा।

हमारे यहां एक कहावत है, 'आग लगने पर कुआं खोदना'। कई बार आग लगी होगी और कई बार कुएं खोदे गए होंगे, तब अनुभवों की मथानी से मथकर ही ऐसी कहावतें मक्खन की तरह ऊपर आई होंगी। लेकिन कहावतों को लोग या नेतृत्व जल्दी भूल जाते हैं। मानसून अपने रहे-सहे बादल समेटकर लौट चुका है। यह साफ हो चुका है कि गुजरात जैसे अपवाद को छोड़ दें तो इस बार पूरे देश में औसत से बहुत कम पानी गिरा है।

अकाल की आग लग चुकी है और अब कुआं खोदने की तैयारी चल रही है। लेकिन देश के नेतृत्व का— सत्तारूढ़ और विपक्ष का भी पूरा ध्यान, लगता नहीं कि कुआं खोदने की तरफ है। अपने-अपने घर-परिवार के चार-चार आना कीमत के झगड़ों में शीर्ष नेतृत्व जिस ढंग से उलझा पड़ा है, उसे देख उन सबको बड़ी शर्म आती होगी, जिन्होंने अभी कुछ ही महीने पहले इनके या उनके पक्ष में मत डाला था। केन्द्र की पार्टियों में चार आने के झगड़े हैं, पतंगें कट रही हैं, मांजा लपटा जा रहा है तो उधर राज्यों की पार्टियों में भी दो आने के झगड़े-टंटे चल रहे हैं। अकाल के कारण हो रही आत्महत्याओं की खबरें

यहां राजा के बेटे को राजा बना देने की खबरों से ढंक गई हैं। कहीं अकाल के बीच लग रही पत्थर की मूर्तियां हमारे नेतृत्व का पत्थर-दिल बता रही हैं।

कई बातें बार-बार कहनी पड़ती हैं। इन्हीं में एक बात यह भी है कि अकाल कभी अकेले नहीं आता। उससे बहुत पहले अच्छे विचारों का अकाल पड़ने लगता है। अच्छे विचार का अर्थ है, अच्छी योजनाएं, अच्छे काम। अच्छी योजनाओं का अकाल और बुरी योजनाओं की बाढ़। पिछले दौर में ऐसा ही कुछ हुआ है। देश को स्वर्ग बना देने की तमन्ना में तमाम नेताओं ने स्पेशल इकोनॉमिक जोन, सिंगूर, नंदीग्राम और ऐसी ही न जाने कितनी बड़ी-बड़ी योजनाओं पर पूरा ध्यान दिया। इस बीच यह भी सुना गया कि इतने सारे लोगों द्वारा खेती करना जरूरी नहीं है। एक जिम्मेदार नेता की तरफ से यह भी बयान आया कि भारत को गांवों का देश कहना जरूरी नहीं है। गांवों में रहने वाले शहरों में आकर रहने लगेंगे, तो हम उन्हें बेहतर चिकित्सा, बेहतर शिक्षा और बेहतर जीवन के लिए तमाम सुविधाएं आसानी से दे सकेंगे। इन्हें लगता होगा कि शहरों में रहने वाले सभी लोगों को ये सभी सुविधाएं मिल ही चुकी हैं। इसका उत्तर तो शहर वाले ही देंगे।

पिछले दिनों कृषि वैज्ञानिकों और मंत्रालय से जुड़े अधिकारियों व नेताओं ने इस बात परजोर दिया है कि कृषि अनुसंधान संस्थाओं में, कृषि विश्वविद्यालयों में अब कम पानी की मांग करने वाली फसलों पर शोध होना चाहिए। उन्हें इतनी जानकारी तो होनी चाहिए थी कि ऐसे बीज समाज के पास बराबर रहे हैं। समाज ने इन फसलों पर, बीजों पर बहुत पहले से काम किया था।

लेकिन इस बात को यहीं छोड़ दीजिए। अब हमारे सामने मुख्य चुनौती है खरीफ की फसल को बचाना और आने वाली रबी की फसल की ठीक-ठीक तैयारी। दुर्भाग्य से इसका कोई बना-बनाया ढांचा सरकार के हाथ फिलहाल नहीं दिखता। देश के बहुत बड़े हिस्से में कुछ साल पहले तक किसानों को इस बात की खूब समझ थी कि मानसून के आसार अच्छे न दिखें तो पानी की कम मांग करने वाली फसलें बो ली जाएं। इस तरह के बीज पीढ़ियों से सुरक्षित रखे गए थे। कम प्यास वाली फसलें अकाल का दौर पार कर जाती थीं। लेकिन आधुनिक विकास के दौर ने,

नई नीतियों ने किसान के इस स्वावलंबन को अनजाने में ही सही, पर तोड़ा जरूर है। लगभग हर क्षेत्र में धान, गेहूं, ज्वार, बाजरा के हर खेत में पानी को देखकर बीज बोने की पूरी तैयारी रहती थी। अकाल के अलावा बाढ़ तक को देखकर बीजों का चयन किया जाता था। पर 30-40 साल के आधुनिक कृषि विकास ने इस बारीक समझ को आमतौर पर तोड़ डाला है। पीढ़ियों से एक जगह रहकर वहां की मिट्टी, पानी, हवा, बीज, खाद– सब कुछ जानने वाला किसान अब छह-आठ महीनों में ट्रांसफर होकर आने-जाने वाले कृषि अधिकारी की सलाह पर निर्भर बना डाला गया है।

एक जिम्मेदार नेता की तरफ से यह भी बयान आया कि "भारत को गांवों का देश कहना जरूरी नहीं है। गांवों में रहने वाले शहरों में आकर रहने लगेंगे तो हम उन्हें बेहतर चिकित्सा, बेहतर शिक्षा और बेहतर जीवन के लिए तमाम सुविधाएं आसानी से दे सकेंगे।" इन्हें लगता होगा कि शहरों में रहने वाले सभी लोगों को ये सभी सुविधाएं मिल ही चुकी हैं। इसका उत्तर तो शहर वाले ही देंगे।

किसानों के सामने एक दूसरी मजबूरी उन्हें सिंचाई के अपने साधनों से काट देने की भी है। पहले जितना पानी मुहैया होता था, उसके अनुकूल फसल ली जाती थी। अब नई योजनाओं का आग्रह रहता है कि राजस्थान में भी गेहूं, धान, गन्ना, मूंगफली जैसी फसलें पैदा होनी चाहिए। कम पानी के इलाके में ज्यादा पानी मांगने वाली फसलों को बोने का रिवाज बढ़ता ही जा रहा है। इनमें बहुत पानी लगता है। सरकार को लगता है कि बहुत पानी देने को ही तो हम बैठे हैं। ऐसे इलाकों में अरबों रुपयों की लागत से इंदिरा नहर, नर्मदा नहर जैसी योजनाओं के जरिए सैकड़ों किलोमीटर दूर का पानी सूखे बताए गए इलाके में लाकर पटक दिया गया है। लेकिन यह आपूर्ति लंबे समय तक के लिए निर्बाध नहीं चल पाएगी।

इस साल, हर जगह जितना कम पानी बरसा है, उतने में हमारे स्वनामधन्य बांध भी पूरे नहीं भरे हैं। और अब उनसे निकलने वाली नहरों में सब खेतों तक पहुंचने वाला पानी नहीं बहने वाला है। कृषि मंत्री ने यह भी घोषणा की है कि किसानों को भूजल का इस्तेमाल कर फसल बचाने के लिए 10 हजार करोड़ रुपए की डीजल सब्सिडी दी जाएगी। यह योजना एक

तो ईमानदारी से लागू नहीं हो पाएगी और अगर ईमानदारी से लागू हो भी गई तो अगले अकाल के समय दोहरी मार पड़ सकती है– मानसून का पानी नहीं मिला है और जमीन के नीचे का पानी भी फसल को बचाने के मोह में खींचकर खत्म कर दिया जाएगा। तब तो अगले बरसों में आने वाले अकाल और भी भयंकर होंगे।

इस समय सरकारों को अपने-अपने क्षेत्रों में ऐसे इलाके खोजने चाहिए, जहां कम पानी गिरने के बाद भी अकाल की उतनी काली छाया नहीं दिखती, बाकी क्षेत्रों में जैसा अंदेशा है। पूरे देश के बारे में बताना तो कठिन है पर राजस्थान में अलवर ऐसा इलाका है, जहां साल में 25-26 इंच पानी गिरता है। इस बार तो उसका आधा ही गिरा है। फिर भी वहां के एक बड़े हिस्से में पिछले कुछ साल में हुए काम की बदौलत अकाल की छाया उतनी बुरी नहीं है। कुछ हिस्सों में तो अकाल को सुंदर भर चुके तालाबों की पाल पर बिठा दिया गया है! जयपुर और नागौर में भी ऐसी मिसालें हैं। जयपुर के ग्रामीण इलाकों में भी बड़ी आसानी से ऐसे गांव मिल जाएंगे, जहां कहा जा सकता है कि अकाल की परिस्थितियों के बावजूद फसल और पीने के लिए पानी सुरक्षित रखा गया है। जैसलमेर और रामगढ़ जैसे और भी सूखे इलाकों की ओर चलें, जहां चार इंच से भी कम पानी गिरा होगा और अब आगे गिरने वाला नहीं है। लेकिन वहां भी कुछ गांव लोगों की 10-20 साल की तपस्या के बूते पर आज इतना कह सकते हैं कि हमारे यहां पीने के पानी की कमी नहीं है। उधर महाराष्ट्र के भंडारा में तो उत्तराखंड के पौड़ी जिले में भी कुछ हिस्से ऐसे मिल जाएंगे। हरेक राज्य में ऐसी मिसालें खोजनी चाहिए और उनसे अकाल के लिए सबक लेने चाहिए। सरकारों के पास बुरे कामों को खोजने का एक खुफिया विभाग

कृषि मंत्री ने यह भी घोषणा की है कि किसानों को भूजल का इस्तेमाल कर फसल बचाने के लिए 10 हजार करोड़ रुपए की डीजल सब्सिडी दी जाएगी। यह योजना एक तो ईमानदारी से लागू नहीं हो पाएगी और अगर ईमानदारी से लागू हो भी गई तो अगले अकाल के समय दोहरी मार पड़ सकती है– मानसून का पानी नहीं मिला है और जमीन के नीचे का पानी भी फसल को बचाने के मोह में खींचकर खत्म कर दिया जाएगा। तब तो अगले बरसों में आने वाले अकाल और भी भयंकर होंगे।

है ही। नेतृत्व को अकाल के बीच भी इन अच्छे कामों की सुगंध न आए तो वे इनकी खोज में अपने खुफिया विभागों को भी लगा ही सकते हैं!

पिछले दिनों कृषि वैज्ञानिकों और मंत्रालय से जुड़े अधिकारियों व नेताओं ने इस बात पर जोर दिया कि कृषि अनुसंधान संस्थाओं में, कृषि विश्वविद्यालयों में अब कम पानी की मांग करने वाली फसलों पर शोध होना चाहिए। उन्हें इतनी जानकारी तो होनी चाहिए थी कि ऐसे बीज समाज के पास बराबर रहे हैं। समाज ने इन फसलों पर, बीजों पर बहुत पहले से काम किया था। उनके लिए आधुनिक सिंचाई की जरूरत ही नहीं है। इन्हें बारानी खेती के इलाके कहा जाता है। 20-30 सालों में बारानी खेती के इलाकों को आधुनिक कृषि की दासी बनाने की कोशिशें हुई हैं। ऐसे क्षेत्रों को पिछड़ा बताया गया, ऐसे बीजों को और उन्हें बोने वालों को पिछड़ा बताया गया। उन्हें पंजाब-हरियाणा जैसी आधुनिक खेती करके दिखाने के लिए कहा जाता रहा है। आज हम बहुत दुख के साथ देख रहे हैं कि अकाल का संकट पंजाब-हरियाणा पर भी छा रहा है। एक समय था जब बारानी इलाके देश का सबसे स्वादिष्ट अन्न पैदा करते थे। दिल्ली-मुंबई के बाजारों में आज भी सबसे महंगा गेहूं मध्यप्रदेश के बारानी खेती वाले इलाकों से आता है। अब तो चेतें। बारानी की इज्जत बढ़ाएं।

इसलिए, इस बार जब अकाल आया है तो हम सब मिलकर सीखें कि अकाल अकेले नहीं आता है। अगली बार जब अकाल पड़े तो उससे पहले अच्छी योजनाओं का अकाल न आने दें। उन इलाकों, लोगों और परंपराओं से कुछ सीखें जो इस अकाल के बीच में भी सुजलाम्, सुफलाम् बने हुए थे।

आलेखः अनुपम मिश्र, पर्यावरण कक्ष, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 110002
□ आवरणः दिलीप चिंचालकर □ प्रकाशकः पैरवी, जी-30 पहली मंजिल, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024 □ ई-मेल pairvidelhi@rediffmail.com
□ पहला संस्करणः 1100 प्रतियां, नवंबर 2009